(देश देशान्तरों में प्रचारित, सबसे सस्ता, उच्च कोटि का आध्यात्मिक-पत्र)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई ॥

वार्षिक मूल्य १॥) एक अङ्क ≈)

सम्पादक—श्रीराम शर्मा ।

वर्ष ५ | मथुरा १ मई सन् १६४४ ई० | अङ्क ५

देश सेवा का मार्ग ।

प्लेटो ने एक स्थान पर लिखा है कि—'किसी देश का इससे अधिक सौभाग्य क्या हो सकता है कि उसमें श्रेष्ठ आचरण वाले स्त्री पुरुषों का बाहुल्य हो ।' कवि वाल्ट व्हाइट मैन का कथन है कि—'किसी देश की महत्ता उसके ऊँचे भवनों, शिक्षालयों, सम्पत्ति कोषों से नहीं हो सकती । बलवान् और चरित्रवान् व्यक्ति ही अपने देश को महान बना सकते हैं । वह बड़ा ही भाग्यशाली राष्ट्र है, जिसके निवासी उच्च आचरण को अपना आदर्श मानते हों । जर्मनी के भाग्य विधाता हिटलर ने एक स्थान पर लिखा है—'हमारे देश को निर्बल स्वास्थ्य वाले धुरन्धर विद्वानों की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियों की अत्यधिक आवश्यकता है, जो भले ही कम पढ़े लिखे हों परन्तु वे स्वस्थ हों, सदाचारी हों, आत्म विश्वासी हों और दृढ़ इच्छा शक्ति वाले हों ।'

देशकी सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हम उच्च आचरण वाले, निर्भीक, साहसी, सदाचारी और स्वस्थ मनुष्यों की संख्या बढ़ावें । सुख, स्वराज्य, सुशासन तब तक किसी देश में स्थिर नहीं रह सकता, जब तक कि वहाँ के निवासी मानवोचित गुणों वाले न हों, वे मानवता का उत्तरदायित्व अनुभव न करते हों । निर्बलता, कायरता, भीरुता, छल, पाखंड और प्रपञ्चना का जब तक जोर रहेगा, तब तक दासता और दुर्भाग्य हमारा पल्ला नहीं छोड़ सकते । महात्मा गांधी का कथन है कि "शारीरिक और मानसिक स्वस्थता की आवश्यकता जो लोग अनुभव करते हों और जो अपने को सब दृष्टियों से बलवान बनाने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहें, ऐसे ही देश सेवकों की भारत माता को आवश्यकता है ।
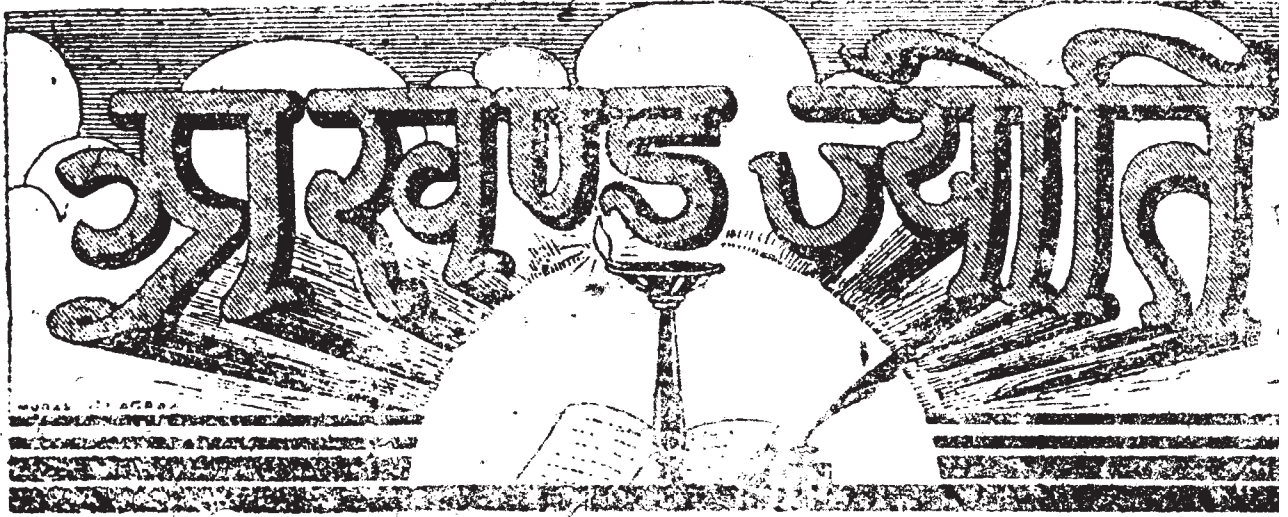
सुधा बीज बोने से पहिले, काल कूट पीना होगा ।
पहिन मौत का मुकुट विश्व-हित, मानव को जीना होगा ॥

वर्ष ५ | मथुरा १ मई सन् १९४४ ई० | अङ्क

विरह-वेदना

"अज्ञात"

निर्गुण-आवरणावृत्त कर, हृदय-स्पन्दन-रत अपना,
अर्धोन्मीलित नयनों में—भर विश्व व्यथा का सपना।
है ऐसा कौन खिलाड़ी करता जो यों मन मानी?
जिसने संघर्ष दिया वह, है कौन वेदना दानी??
जब से प्रशांत निर्गति से—गति आविर्भूत हुई है।
उस क्षण से प्रति अणु-कण में वेदना प्रसूत हुई है॥
अव्यक्त भाव से जग यह जिस क्षण से व्यक्त हुआ है।
यह विश्व, ईश के हिय से—जिस क्षण से त्यक्त हुआ है॥
उस दिन से, उस ही क्षण से—उठती है व्यथा पुरानी।
अणु-अणु में समा गई है, यह विरह वेदना रानी॥
अक्षर से क्षर प्रकटा है, निर्गुण से सगुण हुआ है।
वह एक अनेक बना है, यह त्रिगुण, सुनि[illegible]ण हुआ है॥
अब, सगुण अगुण होने को—यों अकुलाता है छिन-छिन।
क्षर, अक्षर में मिलने को दिन बिता रहा है गिन-गिन॥

अखण्ड-ज्योति !

उतर स्वर्गसे भूमंडल पर, सत् की अमर ज्योति आती है
वेणु बजाती सत्य-प्रेम की, सुमधुर न्याय गान गाती है

मथुरा १ मई सन् १९४४ ई०

धर्म संबंधी तीन प्रश्न

परलोक सुधार के लिए मनुष्य नाना प्रकार के जप, तप, ध्यान, व्रत, उपवास, दान, कथा, तीर्थ आदि का अवलम्बन करते हैं। भविष्य की चिन्ता करना मनुष्य का स्वभाव है, कल की आशा के आधार पर वह आज के कार्यों का आरंभ करता है, मृत्यु के उपरान्त जिस लोक में जाना है, उस परलोक को अच्छा बनाने के लिए प्रयत्न करना स्वाभाविक ही है। फसल की आशा में किसान अपना बीज खेत में बखेर देता है और छै महीने तक खेतों में कठोर परिश्रम करता रहता है, इसी प्रकार मनुष्य परलोक में सुख प्राप्त करने की इच्छा से अपना बहुत सा समय और धन लगाता है, कठोर साधनायें करता है और तरह तरह के नियमों को पालन करता हुआ विविध कर्मकाण्डों में लगा रहता है। छोटे से छोटा कार्य भी त्याग और परिश्रम के बिना पूरा नहीं होता, फिर परलोक सुख तो बिना तपस्या के प्राप्त हो ही कैसे सकता है। निस्संदेह किसी वस्तु की प्राप्ति का मार्ग प्रयत्न ही है, प्रयत्न से ही परलोक में भी सुख प्राप्त हो सकता है।

भारतवर्ष एक आध्यात्मिक देश है, इसकी विचारधारा में इहलोक की अपेक्षा परलोक को अधिक महत्व प्राप्त है। असहाय, अशिक्षित, अभावग्रस्त, दीन हीन व्यक्ति भी अपने विश्वासों के आधार पर कुछ न कुछ परलोक साधना करते रहते हैं। सामूहिक रूप से हिसाब लगाया जाय तो भारत वासियों की एक पंचमाश शक्ति धर्म साधना के लिए व्यय होती है। गणितज्ञों ने हिन्दू जाति की धार्मिक अवस्था पर गहरी खोज की है और हिसाब लगाकर बताया है कि संध्या, पूजा, जप, कीर्तन, तीर्थयात्रा, कर्मकाण्ड, संस्कार, मन्दिर दर्शन, कथा श्रवण, शास्त्रपठन, धार्मिक शिक्षा के निमित्त सर्वसाधारण का जो बहुत सा समय खर्च होता है और साधु, सन्त, पुरोहित, पुजारी, उपदेशक धर्मसंस्थाओं तथा धर्मस्थानों के कर्मचारी आदि का जो पूरा समय खर्च होता है इस सारे समय को जोड़ कर इसका औसत फैलाया जाय तो हर एक छोटे बड़े हिन्दू के हिस्से में पौने तीन घंटे प्रतिदिन का समय आता है। निद्रावस्था को छोड़ कर शेष समय का यह करीब पाँचवां भाग है। इसी प्रकार उपरोक्त कार्यों एवं व्यक्तियों के ऊपर करीब २ अरब ९६ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय होता है। इसकी औसत हर हिन्दू के ऊपर १।। पैसा प्रतिदिन पड़ती है। देश की औसत आमदनी दो आना रोज है। इस तरह सारी आमदनी का एक पाँचवां भाग धर्म के लिए खर्च किया जाता है। एक शब्द में यों कह सकते हैं कि हम लोग अपनी सम्पूर्ण शक्ति का पाँचवा भाग धर्म के निमित्त इस समय भी लगाते हैं।

पंचमांश शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। इतनी शक्ति जर्मनी और रूस जैसे युद्ध ग्रस्त देशों को युद्ध में भी खर्च नहीं करनी पड़ रही है, परन्तु हम लोग स्वेच्छा से खुशी खुशी धर्म के निमित्त इतना बड़ा त्याग 'परलोक सुधार' के लिए करते हैं। यह ठीक भी है धर्म के लिए, परमार्थ के लिए, परलोक

सुख के लिए, इतना त्याग करना उचित ही है, होसके तो इससे अधिक त्याग भी करना चाहिए।

परन्तु इतना बड़ा व्यापार जिसमें पंचमाश शक्ति व्यय होती है—करने के साथ साथ हमें यह भी विचार करना होगा कि जिस कार्य के लिए यह शक्ति खर्च की जाय रही है वह पूरा होरहा है या नहीं ? राज एक दीवार को चिनता है साथ साथ वह इस बात की परीक्षा भी करता जाता है कि दीवार कहीं टेढ़ी मेढ़ी तो नहीं होरही है। व्यापारी लोग चिट्ठे बना कर हिसाब देखते रहते हैं कि व्यापार में लगाई हुई पूँजी सुरक्षित है या नहीं, उससे उचित लाभ मिल रहा है या नहीं ? यदि व्यापारी को लाभ नजर नहीं आता बल्कि पूँजी डूबती दिखाई देती है तो वह तुरन्त ही सावधान होजाता है और अपनी गतिविधि बदल देता है। हम लोग जो धर्म के कष्ट साध्य मार्ग पर चलने का साहस करते हैं, उस व्यापारी की बराबर तो बुद्धिमान अवश्य ही होने चाहिए। किन्तु कितने दुख की बात है कि हम पूँजी तो बराबर लगाते जाते हैं परन्तु यह विचार नहीं करते कि यह डूब रही है या इसका कुछ फल भी प्राप्त हो रहा है।

हर काम में सफलता असफलता की कसौटियां हैं जिनके द्वारा यह जाना जाता है कि लाभ होरहा है या घाटा पड़ रहा है। परलोक सुधार की भी एक कसौटी है वह यह कि "यह लोक सुधार रहा है या नहीं ?" जिन कार्मों से यह लोक सुखमय बनता है निस्संदेह उनसे परलोक भी सुधरेगा। जिन व्यक्तियों का यह जीवन अशान्ति, बेचैनी, अभाव की नरक यातनाओं में बीत रहा है, उसके लिए परलोक में स्वर्ग सुख की आशा करना बेकार है। जीवन एक वृक्ष है जिसका फल परलोक कह सकते हैं। आम के वृक्ष पर ही आम के फल लगेंगे इसी प्रकार परलोक में वे ही आनन्द भोगेंगे जिनका यह लोक आनन्द मय है। [illegible]

और उल्लास के जो संस्कार मनुष्य इस जीवन में इकट्ठे करता है वे ही परलोक में प्रस्फुटित होकर स्वर्ग सुख का आनन्द अनुभव कराते हैं। दिन भर मनुष्य जैसे काम करता है रात को वैसे ही स्वप्न देखता है जिसका जीवन आनन्द में बीता है उसे स्वर्ग का आनन्द मिलेगा, जिसके अन्तःकरण में अभाव, चिन्ता, तृष्णा, क्रोध की आग सुलगती रही है, जो तिरष्कार, अपमान, दीनता, दरिद्रता और दासता की चक्की में जीवन भर पिसता रहा है उसको इसलोक में भी नरक है और परलोक में भी वही मिलेगा। जिसके घर खीर है उसे ही बाहर भी खीर खाने को मिलेगी। जिसको घर में अन्न के लाले हैं उसे बाहर भी उपवास करने पड़ेंगे। जो इस जीवन में नरक भोग रहा है उसका परलोक में स्वर्ग की आशा करना शेखचिल्ली के झूंठे सपने देखने के समान है।

धर्म कार्यों में अपनी पंचमाश शक्ति को व्यय करने के साथ साथ हमें यह भी देखना होगा कि इस महान त्याग का हमारे लौकिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? किस सीमा तक हमारी शारीरिक मानसिक और सामाजिक शक्तियां विकसित होती हैं ? हमारे आनन्द और सुख संतोष में कितनी वृद्धि होती है ? इन कसौटियों पर कस कर ही यह परीक्षा की जा सकती है कि हमारी परलोक साधना सच्ची है या झूठी है। जिस बाग के पौदे सूख सूख कर मुरझाये जारहे हैं उससे फलों की भारी फसल प्राप्त होने की आशा कोई मूर्ख ही कर सकता है। इसी प्रकार जिन लोगों की शारीरिक मानसिक और सामाजिक दशा छिन्नभिन्न हो रही है उनके लिए कोई पागल ही ऐसी आशा करेगा कि इनके लिए इन्द्र का सिंहासन खाली पड़ा होगा। धर्म कोई अंधा कुआ नहीं है जिसमें चाहे जितना डालते जाओ पर कुछ फल ही दृष्टि गोचर न हो। धर्म

समझ जाता है जिसका भुगतान मृत्यु के उपरान्त होगा, परन्तु यह ठीक नहीं असल में धर्म प्रयत्न एक व्यापार है जिसमें उसी दिन से लाभ होना आरम्भ हो जाता है। धर्म एक खेती है जिसके दिन दिन बढ़ते हुए हरे भरे पौदों को हर कोई नित्य आंखों से देखता रह सकता है। सच्चा धर्म—नकद धर्म—है। उसमें "इस हाथ दे उस हाथ ले" की कहावत अक्षरशः चरितार्थ होती है। जो बन्दूक एक मील तक गोली फेंक सकती है वह दस गज के निशाने को क्यों न मारेगी? जिस बत्ती से पांचसौ कदम तक प्रकाश होता है उससे बीस कदम पर प्रकाश क्यों न होगा? जो धर्मसाधना परलोक तक में सुख दे सकती है वह इस लोक में संतोष जनक परिस्थितियां उत्पन्न क्यों न करेगी? वह करेगी और अवश्य करेगी। यदि न करे तो समझना चाहिए यहां असत्य है, पाखंड है, भ्रम है, अज्ञान है। सत्य ऐसा सुगंधित पुष्प है जिसकी गंध दूर दूर तक फैलती है, पर पास में तो और भी अधिक रहती है। धर्म से परलोक सुधरता है पर यह लोक तो निश्चय ही सुधरता है। यदि न सुधरे तो उस कार्य प्रणाली को चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाय पर उसे धर्म तो निश्चय ही नहीं कहा जा सकता।

हम देखते हैं कि पंचमाश शक्ति का व्यय करते हुए भी हम लोग सब प्रकार दीन हीन होरहे हैं, लाखों की संख्या में हम भूख से तड़प तड़प कर मरते हैं, बीमारियां हमें चबैने की तरह चबाये जा रही हैं, गरीबी में हम संसार भर से बढ़े चढ़े हैं, शिक्षा दस प्रतिशत भी नहीं, वैयक्तिक जीवनों में कलह और क्लेश की प्रधानता है, भ्रम और अज्ञान के भूत हमारे कंठ से चिपट गये हैं। चाहे वैयक्तिक दृष्टि से विचार कीजिए चाहे सामूहिक दृष्टि से, चाहे एक औसत हिन्दू को देखिए या सारी हिन्दू जाति पर दृष्टि पात कीजिए, उसका लौकिक जीवन बहुत ही पिछड़ा हुआ दुखी और दीन हीन दिखाई देगा। क्या इन्हें स्वर्ग प्राप्त होगा? मुक्ति मिलेगी? क्या होगा कि रोटी के प्रश्न को न सुलझा सकने वाले लोग कुबेर की समता प्राप्त करने का स्वप्न देखें? सामाजिक और राजनैतिक दासताओं से भी जो छुटकारा न पा सके वे मुक्तिपद पाने की कल्पना में मस्त रहें? यह कल्पनाएं जिस कार्य प्रणाली के आधार पर कर रहे हैं वह ऐसी है कि उसके द्वारा हमारी गरीबी-बेकारी, अशिक्षा बीमारी, अल्पायु, दुर्बलता, कलह, क्लेश, कटुता कायरता तक न हट सकीं, फिर कैसे आशा की जाय कि इन धार्मिक क्रिया पद्धतियों द्वारा हमारा परलोक सुधर जायगा?

हमें बुद्धिवान् व्यापारी की तरह विचार करना होगा कि जिस धर्म के नाम पर हम अपनी शक्ति का, समय और धन का, पांचवां हिस्सा खर्च कर रहे हैं वह वास्तव में धर्म है भी या नहीं? शास्त्र कहते हैं कि "धर्मो रक्षति रक्षितः" जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। हम पंचम शक्ति द्वारा धर्म की रक्षा कर रहे हैं इतनी बड़ी शक्ति इस धरती माता पर किसी भी देश या जाति द्वारा धर्म के लिए खर्च नहीं की जा रही है। आना प्रतिदिन की औसत आमदनी के जमाने में भी हम लोग जितना त्याग करते हैं उतना कोई सम्पन्न देश भी नहीं कर पाता। इतना होते हुए भी संसार की अन्य जातियां इस पृथ्वी पर स्वर्ग भोग रही हैं और हम लोगों के सामने इस पर भगवान् के दस अवतार हुए उस परम पवित्र रत्नगर्भा, शस्य श्यामला भूमि में भी नरक उपस्थित है। हम धर्म के लिये बहुत कुछ कर रहे हैं, नाम जप, अखंड कीर्तन, संकीर्तन, यज्ञ, हवन, कथा, व्रत, उपवास, पूजापत्री, दान दक्षिणा, साधु सेवा, ब्रह्मभोज, श्राद्ध, तर्पण, तिलक छाप, कंठी जप, गौ ग्रास, तीर्थ यात्रा, प्रार्थना, प्रदक्षिणा सब कुछ तो जारी है, फिर भी धर्म हमारे लिए कुछ नहीं करता। छप्पन लाख पेशेवर और उससे चौगुने अर्ध पेशेवर व्यक्ति धर्म के नाम पर अ

देता। ईश्वर के रहने के लिये आलीशान राजमहलों को मात देने वाले मन्दिर बनवाये गये हैं, भोग के लिए लाखों रुपया प्रतिदिन के भोग लगाये जाते हैं, टहल चाकरी की राजा महाराजाओं से भी बढ़िया व्यवस्था है, इस पर भी ईश्वर हमारी ओर कुछ ध्यान नहीं देता, उल्टी अनेकानेक आधि व्याधियों का प्रकोप बढ़ता जाता है। यह समस्या ऐसी कठोर और कर्कश है कि बलात् हमारा ध्यान अपनी ओर खींचती है और इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने की चुनौती देती है कि हम बुद्धिमान व्यापारी की तरह सोचें कि जिस उद्देश्य के लिए अपनी शक्ति का सर्वोत्तम अंश खर्च किया जारहा है वह पूरा होता है या नहीं? जिस व्यापार में पूँजी लगाई जा रही है उसमें सफलता मिलती है या नहीं?

अखण्ड ज्योति अपने पाठकों से विशेष बल पूर्वक कहती है कि वे इस प्रश्न पर गंभीरता के साथ विचार करें। धर्म जीवन का मेरुदंड है, खासतौर से हिन्दू जाति का तो वह प्राण ही है। यदि धर्म के स्थान पर हम अधर्म की पूजा कर रहे हैं तो समझना चाहिए कि अपनी रक्त वाहिनी धमनियों का मुंह खोलकर शरीर का सारा रक्त निष्प्रयोजन और अनुचित स्थान पर बहाये देरहे हैं। यह स्थिति घातक है, खासतौर से आज की दीन हीन दशा में तो और भी अधिक प्राण घातक है। यदि हमारी वैयक्तिक और सामूहिक शक्तियों का व्यय अनुचित एवं अनावश्यक मार्ग में होरहा है तो हम में से हर एक का कर्तव्य है कि उपेक्षा एवं अधूरे मन के साथ नहीं वरन् पूरी पूरी जिम्मेदारी, गंभीरता, और विवेकशीलता के साथ यह विचार करे कि क्या धर्म का यही वास्तविक रूप है जिसके लिए हिन्दू जाति आज अपनी पंचमांश शक्ति व्यय कर रही है? यदि यह नहीं है तो धर्म का वह सच्चा स्वरूप क्या है? जिसको अपनाने से तुरंत ही धर्म सेवी शारीरिक मानसिक और सामाजिक उन्नति दृष्टिगोचर हो? जिससे यह लोक परलोक सुखी एवं परलोक

योग द्वारा ही नवनिर्माण होगा

(योगी अरविन्द घोष)

अब पुनर्संगठन का युग आगया है। भारत व उन्नति का आरंभ होगया है। नवीन युग के आरंभ के उपलक्ष में धर्म, नीति, विद्या, ज्ञान इत्यादि अनेक प्रकार के आन्दोलन मनुष्य समाजों में अवतीर्ण हुए देखे जारहे हैं।

संसार में जिस नये युग का आविर्भाव होगा जिस सत्य, प्रेम तथा न्याय की भगवान ने इस पृथ्वी पर प्रतिष्ठा करने की इच्छा की है वह मनुष्य चरित्र में आंशिक परिवर्तन से संभव नहीं, एक बार काया पलट करनी होगी। पुराने संस्कारों से यह कार्य सिद्ध नहीं होगा! बाह्य जीवन में थोड़ा सा परिवर्तन लाने मात्र से यह नहीं होसकता।

आवश्यकता इस बात की है कि यह नवनिर्माण भीतर से आरंभ होना चाहिए। मानव अन्तःकरण को एक दम से नया आकर प्रकार धारण करना होगा। मन प्राण और चित्त की वृत्तियों में पूर्ण रूप से परिवर्तन करना होगा। इसका कारण यह है कि मानव समाज एवं जगत की सम्पूर्ण वस्तुओं का स्वभाव ही विचित्रता पूर्ण होगया है, एकता का भाव बदल कर उसमें अनेकता का भाव आगया है। समता का सिद्धान्त लुप्त होकर विषमता दृष्टि-गोचर होरही है। इसी स्वभाव के परिवर्तन के लिए योग का आश्रय लेना होगा।

राजनीतिक अथवा सामाजिक संघ की स्थापना से अथवा किसी आदर्शवाद, दर्शन शास्त्र, इत्यादि के द्वारा समूल परिवर्तन होना संभव नहीं है। योग के द्वारा अपने में भगवान को प्राप्त करना होगा, अपने जीवन को भगवद्भाव से ही पुनर्संगठित करना होगा। पूर्णयोग द्वारा ही यह सब संभव है। इसी पूर्ण योग की साधना से सिद्ध होकर भारतवर्ष नेतृत्व की स्थापना करेगा।

विजय का महापथ

(प्रोफेसर रामचरणजी महेन्दु एम० ए० डी० लिट्)

बारम्बार निष्फलता प्राप्त होने के कारण तुम निराश हो चुके हो, विपत्तियों ने तुम्हारी आशाओं पर तुषारपात किया है, तुम्हारी महत्त्वकांक्षाएँ मृत प्राय हो चुकी हैं, प्रत्येक स्थान पर तुम्हें पराजित, लज्जित और नीचा देखना पड़ा है, जिस कार्य को तुमने हस्तगत किया उसी में हानि हुई, तुम्हारे हौसले चूर्ण हो चुके हैं आत्मा के चारों ओर एक दुःखद अन्धकार घनीभूत है, तुम दीन हीन निकृष्ट तथा निर्मात्य स्थिति में पड़े हो, चारों ओर शून्यता ही शून्यता दृष्टिगोचर होरही है, अन्त निकट प्रतीत होता है, ऐसी स्थिति में क्या करें?

प्रयत्न करो। पुनः पुनः कोशिश करो। निराश मत हो। जितनी बार तुम्हें ठोकर लगे पुनः नवीन उत्साह और नवीन वेग से अग्रसर हो। एक बार निष्फलता से परास्त हो जाओ तो दुबारा तिबारा कोशिश करो। कोशिश करना न छोड़ो। हजार बार प्रयत्न करना पड़े तो भी प्रयत्न में लगे रहो। निज संकल्पों को कार्य रूप में परिणत करने के हेतु नित्य नवीन प्रयत्न करना—पराजित होकर भी नई आशा, नई उमंग और दृढ़ निश्चय में प्रयत्नशील होना—विजय प्राप्ति का राज मार्ग है।

जिस प्रकार पंख रहित पक्षी आकाश में नहीं उड़ सकता, उसी प्रकार प्रयत्न रहित व्यक्ति विजय प्राप्ति नहीं कर सकता। वह एक दो साधारण सी प्रतिकूलताओं पर भी विजय प्राप्त नहीं कर पाता। दैव भाग्य, उद्वेग, परिस्थितियों का दोष बना रहता है। उसके आदर्श संकल्प स्थिर नहीं हो पाते। वह कुकल्पना की अशुभ वृत्ति के बंधन में आबद्ध रहता है। जब तक मानव प्रकृति में रमे हुए अज्ञान, दुःख, स्वार्थ, और कम हिम्मती के मर्य्यादाओं और निर्बलताओं के प्रश्न को पूर्ण तरह हल नहीं किया जा सकता।

आध्यात्मिक उन्नति ही सच्ची दिशा में मानव का विकास साध सकती है। जिस आत्मबन्धु के हृदय में इस महा तथ्य के लिए पुकार उठ रही है वह अपनी कामनाओं की प्रेरणा उस चैतन्य केन्द्र की ओर कर सकता है जो मानव की शक्ति का केन्द्र स्थान है। पश्चिम के विचारक और साधारण जनता इस तत्त्व की ओर क्रमशः उन्मुख हो रहे हैं।

पराजय की कुत्सित भावनाएँ सर्व प्रथम अन्तःकरण पर अपना अधिकार कर लेती हैं। तदन्तर यही भावना मनुष्य के बाह्य वातावरण पर अपना प्रभाव डालती है। अन्तःकरण की दास वृत्ति के अनुसार ही दासत्त्व के बंधन बढ़ते हैं। विजय के लिए विजय की भावना ही अन्तःकरण की स्थिर वृत्ति बने, वैसे ही मानस चित्र मस्तिष्क में आएँ, वैसी ही साधना संकल्प इत्यादि चलते रहें तब ही विजय प्राप्ति होती है।

मनुष्यों का एक बृहत् भाग इस कारण विजय प्राप्ति नहीं कर सकता क्योंकि वह पराजय से डर कर कोई नया उद्योग प्रारम्भ नहीं करता। ऐसे व्यक्तियों के हृदय में एक गुप्त चुप पीड़ा लगी रहती है कि यदि मैं कोई नवीन कार्य करूंगा तो कहीं मुझे सफलता प्राप्त होगी अथवा नहीं। इन्हें अपनी शक्तियों पर विश्वास नहीं होता यह भय अत्यन्त हानिकर है। आत्मा के विकास का सबसे बड़ा शत्रु यही है। उनकी आत्मा में जो स्फुरणा होता है उसके अनुसार कार्य न कर के वे सदैव पिछड़े रहते हैं।

विजय का प्रारम्भ मानसिक स्वतंत्रता से होता है। सर्वप्रथम मनमें छुपी संशय वृत्ति का क्षय करना

को परिचय और विश्वास कैसे कराया जासकता है? यह प्रश्न विचारणीय है, इसलिए विवेक पूर्वक इनपर विचार करनेका पाठकोंसे हमारा आग्रह

चाहिए। अन्तरात्मा की शुभ प्रेरणा के अनुसार कार्य करने से उत्तरोत्तर विजय की ओर प्रवृत्ति होती है।

क्या तुमने कभी अपने हृदय में छिपे "भय" नाम के शत्रु को खोज निकालने का प्रयत्न किया है? पुनः २ मन की छान बीन करो और मालूम करो कि तुम्हें निम्नस्थिति में डालने वाला यह भयानक शत्रु कहाँ बैठा है। ज्यों २ तुम आत्म प्रेरणा में मन लगाओगे त्यों २ इस शत्रु का क्षय होगा और अन्त में अपनी श्रद्धा द्वारा ही तुम्हें विजय लाभ हो जायगा। मानव की गुरुतम न्यूनता यही है कि वह अपने आत्म विश्वास को दृढ़ नहीं करता, प्रत्युत सदैव शंकाशील भावना बनाये रहता है। याद रखिये मनुष्य की योग्यता चाहे कितनी ही बढ़ी चढ़ी क्यों न हो फल उसे उतना ही प्राप्त होगा जितना वह स्वयं अपने आप को मानता है।

संसार में तुम कुछ भी कर सकते हो यदि तुमने आत्मश्रद्धा नामक बल संचय कर लिया है। हमारी श्रद्धा की शक्तिएँ उसी ओर अग्रसर होंगी जिस ओर हम उन्हें प्रेरित करेंगे। यदि हम दृढ़ता पूर्वक उन्हें आज्ञा दें तो वे अवश्यमेव सफलता प्राप्त कराने में हमारी सहायक होंगी। श्रद्धा हमारी सबसे उत्तम प्रेरक शक्ति है।

अनुकरणीय सत्कर्मों के समाचार छपा करेंगे

अगले मास में "अखण्डज्योति परिवार के सतयुगी कार्य" शीर्षक के नीचे एक पृष्ठ में संक्षिप्त समाचार भी दिये जाया करेंगे। पाठकों से प्रार्थना है कि आदर्श, अनुकरणीय, सत्कार्यों की जो घटनाएँ अपने यहां हों उनके समाचार अखण्डज्योति में छपने के लिए भेजते रहा करें। जिन्हें पढ़कर दूसरे लोगों को भी आचरण सुधारने, परोपकार करने, सत्य प्रेम तथा न्याय के मार्ग पर चलने का प्रोत्सा-

योगियो! कृतघ्न मत बनो!

(द्रोणागिरि के महात्मा सन्तशरणदासजी का योगियों को संदेश)

परम्परया प्राप्त योग वृत्ति में असंख्य योगीजन संलग्न हैं। पूरा ही योग्यराज्य उनके आधीन है। वास्तव में योगमाया, योग लक्ष्मी, योग बल, योग चमत्कार अपने व्यक्तिगत कल्याण के लिए नहीं वरन् जातीय कल्याण के लिए हैं।

जिस गृहस्थाश्रम ने अनेकों कष्ट सहकर योगाश्रम की, योगी की, योगविद्या की सर्वथा रक्षा की है वही गृहस्थाश्रम आज अनेक प्रकार के दुःखों में ग्रसित दीन हीन पड़ा हुआ है। क्या ऐसे समय में भी योगीवृन्द अपने ऊपर हुए उपकारों का स्मरण न करेंगे? क्या स्वर्गीय मुक्तिसाधन रूप अपने निजी स्वार्थ का त्याग न करेंगे? अथवा योग सिद्धियों के द्वारा धन, मान, यश का अर्जन कर समाधि के साथ ही गठरी बाँधकर ले चलेंगे?

आज इस अवसर पर सब योग-शक्तियों को उचित है कि वे एकत्रित हों और योग निद्रा एवं योगैश्वर्य की सम्पत्ति को अकेले ही भोगने की भावना कोछोड़कर भारत के प्राचीन ऋषि मुनियों का मार्ग अपनावें। लोक कल्याण में जुट जावें। उनके प्रण पूर्वक प्रयत्न से संसार की काया पलट हो सकती है। आध्यात्म शक्तियों के तेज से संसार का अन्धकार दूर होकर सर्वत्र निर्मल प्रकाश की ज्योति छिटक सकती है।

आज सारा संसार आधि व्याधियों से ग्रसित होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहा है। ऐसी दशा में ज्ञानी सन्तों को ज्ञान द्वारा, धनी साधुओं को धन द्वारा, योगीजनों को योग द्वारा, सिद्धों को सिद्धि द्वारा, तत्व दर्शियों को तत्व ज्ञान द्वारा, लोक सेवी महात्माओं को लोक सेवा द्वारा, गृहस्थाश्रम को विपत्ति में से निकालने का [illegible]

सच्चा स्वास्थ्य प्राप्त कीजिए

(महात्मा गान्धी)

सर्वत्र अच्छे स्वास्थ्य की आवश्यकता अनुभव की जाती है, सभी इसके लिए चिन्तित रहते हैं परन्तु कितने हैं जो "स्वास्थ्य क्या है" इस प्रश्न पर गहराई से विचार करते है ? यदि घमंड करने, अकड़ने, सताने या ऐश आराम करने के लिए ही स्वास्थ्य की आवश्यकता हो तो इसकी अपेक्षा यह अच्छा है कि हम रोग शय्या पर पड़े रहें।

सभी धर्म वाले इस बात को मानते हैं कि हम लोगों का शरीर ईश्वर का वासस्थान है, तथा इसी के द्वारा हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। अतः हमारा कर्तव्य है कि जहां तक होसके इसे बाहर तथा भीतर से स्वच्छ एवं कलंक रहित रखा जाय ताकि समय आने पर हम इसे उसी पवित्र अवस्था में ईश्वर को सौंप सकें जिस अवस्था में हमने इसे प्राप्त किया था। यदि हम इस विनय को भली भांति पालन करें तो ईश्वर प्रसन्न होकर अवश्य ही हमें इसका प्रतिफल देगा और हमें अपना सच्चा पुत्र समझेगा।

हमारा शरीर तभी सार्थक हो सकता है जब कि हम इसे ईश्वर का मन्दिर मानेंगे एवं उसी की आराधना के लिए इसे अर्पित कर देंगे। यह रक्त, माँस और हड्डियों के अलावा और कुछ भी नहीं है और इससे जो मलमूत्र निकलता है सिवाय विषके और कुछ नहीं है। जो गंदगी हमारे शरीर से निकलती है, उसे छूना तो दूर रहा हम उसे ध्यान में भी नहीं लाते। इस शरीर का पालन करने के लिए हम झूठ बोलते हैं विश्वासघात करते हैं एवं इससे भी अधिक बुरे कर्म करते हैं। यह कैसी लज्जा की बात है कि हम इन कुकर्मों को करके इस नश्वर शरीर की रक्षा करते हैं।

हम लोगों के शरीर में अन्तरात्मा (पुण्य) और कुवृत्ति (पाप) में सदैव संघर्ष हुआ करता है। इधर अन्तरात्मा शरीर पर अपना अधिकार जमाना चाहती है उधर पाप रूपी शैतान उसे अपने वश में करना चाहता है। यदि अन्तरात्मा की विजय हुई तब तो यह शरीर दिव्य होकर रत्नों की एक खान बन जाता है और यदि शैतान की विजय हुई तो यह महापापों का घर बन जाता है। ऐसा शरीर साक्षात् नरक के समान है, उसमें सड़ने गलने वाले पदार्थ भर जाते हैं, जिससे दुर्गन्ध पैदा होती है। उसके हाथ पांव बुरे कर्मों को करते हैं, जिह्वा ऐसे पदार्थों का स्वाद चाहती है जिसे नहीं खाना चाहिए और ऐसी वाणी बोलती है जिसे नहीं बोलना चाहिए। उसकी आंखें न देखने योग्य वस्तुओं को देखना चाहती है, कान न सुनने योग्य शब्दों को सुनना चाहते हैं। ऐसा शरीर साक्षात् नरक ही है। ऐसे शरीर का रहना और न रहना, स्वस्थ या रोगी रहना एक समान है।

आरोग्य के संबंध में मैं सदा से यही कहता आया हूं कि वास्तविक स्वास्थ्य हम तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हम लोग उसके नियमों का सच्चे रूप में पालन करेंगे बिना स्वास्थ्य के सच्चा सुख प्राप्त नहीं हो सकता, किन्तु स्वस्थ हम तभी होसके हैं कि जब अपनी जिह्वा को वश में रखें। स्वादेन्द्रिय पर काबू रखने से अन्य इन्द्रियां अपने आप वश में हो जाती हैं। जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया। उसने वास्तव में सारे संसार को वश में कर लिया और ईश्वर का सच्चा अंश होगया, रामायण पढ़ने से राम, गीता पढ़ने से कृष्ण, कुरान से खुदा और बाइबिल से ईसा मसीह प्राप्त नहीं हो सकते वे तो तभी मिलेंगे जब हम अपने आचरणों को पवित्र बनावें।

सच्चरित्रता, सतकर्मों पर अवलम्बित है और सतकर्म सत्य विश्वासों पर निर्भर हैं। सत्यता ही सबका मूल है। यही सफलता की कुंजी और सुन्दर स्वास्थ्य प्राप्त करने की आधार शिला है।

मित्रता क्यों की जाती है ?

(दार्शनिक सिसरो)

क्या कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य से इस कारण मित्रता करता है कि वह पारस्परिक प्रत्युपकारों से वह लाभ प्राप्त करे जो अकेला रह कर नहीं कर सकता ? या मित्रता का बन्धन किसी प्राकृतिक ऐसे उदार नियम से संबंधित है जिसके द्वारा एक मनुष्य का हृदय दूसरे के हृदय के साथ अधिकांश में उदारता और निस्वार्थता की भावना के साथ जा जुड़ता है ?

उपरोक्त प्रश्नों की मीमांसा करते हुए हमें यह जानना चाहिए कि मित्रता के बन्धन का प्रधान और वास्तविक हेतु प्रेम है । कभी कभी यह प्रेम वास्तविक न होकर कृत्रिम भी हुआ करता है परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि मित्रता का भवन केवल स्वार्थ की ही आधार शिलापर स्थित है।

सच्ची मित्रता में एक प्रकार की ऐसी स्वाभाविक सत्यता है जो कृत्रिम और बनावटी स्नेह में कदापि नहीं पाई जासकती । मेरा तो इसी लिए ऐसा विश्वास है कि मित्रता की उत्पत्ति मनुष्य की दरिद्रता पर न होकर किसी हार्दिक और विशेष प्रकार के स्वाभाविक विचार पर निर्भर है जिसके द्वारा एक समान मन वाले दो व्यक्ति परस्पर स्वयमेव संबंधित होजाते हैं ।

यह पुनीत आध्यात्मिक स्नेह भावना पशुओं में भी देखी जाती है । मातायें क्या अपने बच्चों से किसी प्रकार का बदला चाहने की आशा से प्रेम करती हैं ? बेचारे पशु जिनको न तो अपनी दीनता का ज्ञान है, न उन्नति की आकांक्षा है और न किसी सुनहरे भविष्य का प्रलोभन है भला वे अपने बच्चों से किस प्रत्युपकार की आशा करते होंगे ? सच तो यह है कि प्रेम करना जीवका एक आत्मिक गुण है। यह गुण मनुष्य में अधिक मात्रा में प्रकट होता है इसलिए वह मित्रता की ओर आकर्षित

जिसके आचरण और स्वभाव हमारे समान ही हों अथवा किसी ऐसे मनुष्य को जिसका अन्तः करण ईमानदारी और नेकी से परिपूर्ण हो, किसी ऐसे मनुष्य को देखते ही हमारी मन उसकी ओर आकर्षित होजाता है । सच तो यह है कि मनुष्य के अन्तःकरण पर प्रभाव डालने वाला नेकी के समान और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है । धर्म का प्रभाव यहां तक प्रत्यक्ष है कि जिन व्यक्तियों का नाम हमको केवल इतिहासों से ही ज्ञात है और उनको गुजरे चिर काल व्यतीत होगया उनके धार्मिक गुणों से भी हम ऐसे मुग्ध होजाते हैं कि उनके सुख में सुखी और दुख में दुखी होने लगते हैं।

मित्रता जैसे उदार बन्धन के लिए ऐसा विचार करना कि उसकी उत्पत्ति केवल दीनता पर ही है अर्थात् एक मनुष्य दूसरे से मित्रता केवल इसीलिए करता है कि वह उससे कुछ लाभ उठावे और अपनी अपूर्णता को उसकी सहायता से पूर्ण करे, मित्रता को अत्यन्त ही तुच्छ और घृणित समझना है । यदि यह बात सत्य होती तो वे ही लोग मित्रता जोड़ने में अग्रसर होते जिनमें अधिक अवगुण और अभाव हों परन्तु ऐसे उदाहरण कहीं दिखाई नहीं पड़ते । इनके विपरीत यह देखा गया है कि जो व्यक्ति आत्मनिर्भर हैं, सुयोग्य हैं, गुणवान हैं, वे ही दूसरों के साथ प्रेम का व्यवहार करने को अधिक प्रवृत्त होते हैं। वे ही अधिकतर उत्तम मित्र सिद्ध होते हैं।

सच तो यह है कि परोपकार अपने उत्तम कार्यों का व्यापार करने से घृणा करता है और उदार चरित व्यक्ति अपनी स्वाभाविक उदारता का आचरण करने—दूसरों को सुख पहुंचाने में—आनन्द मानते हैं वे बदला पाने के लिए अच्छा व्यवहार नहीं करते। मेरा निश्चित विश्वास है कि सच्ची मित्रता लाभ प्राप्त करने की व्यापार बुद्धि से नहीं जुड़ती, वरन् इसलिए जुड़ती है कि मित्रभाव के निस्वार्थ वर्ताव से एक प्रकार का जो आध्यात्मिक सुख मिलता है वह प्राप्त हो ।

ज्ञानयोग की एक सुलभ साधना

"नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"

गीता ४।३८

गीता में भगवान् कृष्ण ने कहा है कि ज्ञान के समान पवित्र और कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। निस्संदेह इस भूमंडल में जितने श्रेष्ठ तम पदार्थ हैं उन में ज्ञान का स्थान सर्वोपरि है। मनुष्य इसी-लिए सृष्टि का सर्वोच्च प्राणी है कि उसमें ज्ञान अधिक है। शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की अपेक्षा अनेक पशु आगे बढ़े हुए हैं किन्तु ज्ञान के अभाव में ही उन्हें मनुष्य का दासत्व स्वीकार करना पड़ता है। मनुष्यों में भी जो व्यक्ति अधिक प्रतिष्ठित हैं, अधिक सम्पन्न हैं, उच्च पदों पर हैं वे अधिक ज्ञान के कारण ही है। चतुर व्यक्ति साधन हीन घर में उत्पन्न होकर भी महत्व को प्राप्त करते हैं और अज्ञानी मनुष्य अपनी पैतृक संपदा तथा प्रतिष्ठा को भी खो बैठते हैं। दुनियां में लक्ष्मी, विद्या, प्रतिष्ठा, बल, पद, मैत्री, कीर्ति, भोग, ऐश्वर्य आदि को बड़ा माना जाता है परन्तु यह सब ज्ञान रूपी वृक्ष के फल हैं। ज्ञान के अभाव में इनमें से एक भी वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती, यदि पूर्वजों द्वारा ज्ञान बल से संचित वस्तुऐं अज्ञानी संतान के हाथों पड़ें तो वह उन्हें स्थिर नहीं रख सकता, थोड़े ही समय में वह उसके हाथ से चली जाती है। मुट्ठी भर अंग्रेज अपने बुद्धिबल से इतने बड़े साम्राज्य पर कब्जा किये हुए हैं जिसमें कभी सूर्य अस्त नहीं होता। विज्ञान ने जल थल और आकाश को अपने वश में कर लिया है। तात्पर्य यह कि दुनियां में जितना भी ऐश्वर्य है वह ज्ञान का प्रसाद है। ज्ञान का ही दूसरा नाम सुख है। "संसार में ज्ञान से बड़ी और

आने चरितार्थ होता हुआ हम अपनी आंखों से इस संसार में देख रहे हैं।

इस लोक के सारे सुख ज्ञान के ऊपर निर्भर हैं, परलोक का सुख भी ज्ञान द्वारा ही सम्पादित होता है। विवेक और विचार पूर्वक किये हुए जप, तप, व्रत, तीर्थ दान आदि सफल होते हैं, अविवेक द्वारा करने पर यह उत्तम कार्य भी निष्फल जाते हैं और कभी कभी तो उलटे हानिकारक हो जाते हैं। विवेक द्वारा ही मनुष्य आत्म ज्ञान, संयम, भक्ति, परमार्थ आदि की साधना करके जीवन मुक्त हो सकता है, परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। आत्म कल्याण के लिए, ज्ञान की सब से अधिक आवश्यकता है।

परमार्थ के लिए ज्ञान से बड़ी और कोई वस्तु नहीं है। भूखे को दो रोज भोजन करा देने से सदा के लिए उसका भला नहीं होगा, उसे कोई ऐसी राह दिखानी होगी जिस पर चलकर वह स्वयं जीविका उपार्जन कर सके। बीमारी दवा से अच्छी भी होजाय तो भी निरोगता के लिए स्वास्थ संबंधी ज्ञान आवश्यक है। दवा के आधार पर सदा के लिए किसी का रोग नहीं जा सकता पर ज्ञान के आधार पर बिना दवा के भी रोग अच्छा होसकता है और सुन्दर स्वास्थ्य तथा दीर्घ जीवन प्राप्त हो सकता है। चिन्ता, तृष्णा, लोलुपता, कामुकता, उद्विग्नता, क्रोध, शोक घबराहट, निराशा सरीखी भयंकर मानसिक अशान्तियां जो जीवन को भार रूप और नारकीय बनाये रहती हैं ज्ञान द्वारा ही शान्त हो सकती हैं। तीनों लोकों की सामग्रियों मिलने से भी उपरोक्त अग्नियां बुझ नहीं सकतीं, बल्कि और उलटी बढ़ती हैं, उन्हें बुझाने वाला एक मात्र पदार्थ ज्ञान ही है। क्लेश को दूर करके अक्षय आनंद प्रदान करने वाला देवता 'ज्ञान' ही है। सांसारिक और पारलौकिक शान्ति की कुंजी ज्ञान ही है तुच्छ मनुष्य इसी के बल से ही महापुरुष और महात्मा बनते हैं। दूसरों की सेवा सहायता करने वाली इस से बड़ी और कोई वस्तु नहीं है।

माना गया है। गुरु की गोविन्द से उपमा दी गई है। आचार्यों का मत है कि विद्या दान करने वाला दूसरे जन्म में मनुष्य शरीर तो अवश्य प्राप्त करता है क्योंकि अन्न आदि दानों का बदला तो दूसरी योनियों में भी मिल सकता है पर विद्या का बदला मनुष्य शरीर के अतिरिक्त और किसी शरीर में नहीं मिल सकता। इसलिये विद्या दान करने वालों को सुर दुर्लभ मनुष्य तन तो अवस्य ही मिलता है।

संसार में सुख शान्ति तब होगी जब मनुष्य अशक्ति, अन्याय, आलस्य आपापूती और असत्य को छोड़ देगा। इन शत्रुओं को ज्ञान के हथियार से ही मार भगाया जा सकता है। अधर्म के चंगुल में से छुड़ाकर धर्मात्मा बनाने की, अशान्ति को मिटाकर शान्ति स्थापित करने की, शक्ति केवल ज्ञान में ही है। जिस महातत्व की ऊपर विश्व की सारी समस्याऐं निर्भर है उस ज्ञान रूप परमात्मा को उपासना करना ही संसार का सबसे बड़ा उपकार है। ज्ञान साधना से बढ़कर और कोई पुण्य कर्म इस संसार में नहीं है। भगवान ने कहा—'ज्ञान ज्ञानवतामहम्' अर्थात् ज्ञानवानों में जो ज्ञान है वह मैं ही हूँ। निस्संदेह ज्ञान ईश्वरीय दिव्य शक्ति ही है। सर्वश्रेष्ठ यज्ञ भी यही है। गीता कहती है—"श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञात् ज्ञान यज्ञः परंतप।" अर्थात्—हे अर्जुन! सांसारिक पदार्थों द्वारा होने वाले यज्ञों की अपेक्षा "ज्ञान यज्ञ" श्रेष्ठ है। यज्ञ को उच्चकोटि का पुण्य माना गया है, उनमें भी ज्ञान यज्ञ सबसे ऊंचा है। तात्पर्य यही है कि ज्ञान साधना से बढ़कर और कोई पुण्य कर्म इस विश्व में नहीं है।

'अखंड ज्योति' अपने पाठकों को इसी महानतम पुण्य कर्म में प्रवृत्त कराने के लिए सतत प्रयत्न शील रही है। हमारी आन्तरिक इच्छा यही है कि पाठकों का मानसिक और आध्यात्मिक विकास हो, क्यों कि लौकिक और पारलौकिक सुख किसी की कृपा से नहीं मिलते वरन मनोबल द्वारा पुरुषार्थ पूर्वक [illegible] सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। यह मनोबल जो उन्नति एवं आनन्द का प्रधान साधन है, ज्ञान के बिना प्राप्त नहीं होता। हमारे पाठक अपना जीवन आनन्द एवं उन्नति के साथ बितावें अपनी इस इच्छा को हम ज्ञान द्वारा ही पूरा होने की आशा करते हैं इसलिए सदैव ही मनुष्य की विवेक बुद्धि को जागृत करने का हमारा प्रयत्न रहता है। अखंड ज्योति का सारा कार्यक्रम इस एक ही मध्य विन्दु के द्वारा संचालित होता है। इस कार्यक्रम को और आगे बढ़ाने के लिए एक व्यवहारिक योजना पाठकों के सामने उपस्थित की जारही है।

"ज्ञान-मंन्दिर" योजना।

(१) दुख रूप अज्ञान को मिटाने और सुख रूप ज्ञान का प्रसार करने के लिए स्थान स्थान पर केन्द्र स्थापित किये जाँय जिनका नाम "ज्ञान मन्दिर" रहे।

(२) स्वाध्याय और सत्संग द्वारा अपने तथा दूसरों के ज्ञान को बढ़ाना मंदिरों का उद्देश्य होगा। इनको मन द्वारा अन्तः करण में धारण करने और शरीर द्वारा कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया जायगा।

(३) बुद्धि संगत, समय के अनुकूल, प्रत्यक्ष, अन्तःकरण में पवित्रता उत्पन्न करने वाले, उन्नति की ओर अग्रसर करने वाले, उदार, लोकहितकारी एवं उचित, सिद्धान्तों को ज्ञान समझना चाहिए इसके अतिरिक्त और बातें अज्ञान समझना चाहिए।

(४) ज्ञान मंदिर के सदस्य बनने वाले को निम्न बातें स्वीकार करनी चाहिये।

(अ) वह अपने को ज्ञान रूपी परमात्मा का अनन्य भक्त समझे। और अपने आराध्य देव की पूजा के लिए सतत प्रयत्न करता रहे।

(ब) अपने को अज्ञान रूपी असुर का घोर शत्रु समझे और एक वीर योद्धा की तरह उसको

(स) स्वाध्याय और सत्संग उसके नित्य कर्म होंगे। स्वाध्याय का तात्पर्य–(१) सद्ग्रन्थों का पढ़ना, (२) मनन करना, (३) आत्मचिन्तन करना है। और सत्संग का अर्थ–(१) श्रेष्ठ पुरुषों के विचारों को ग्रहण करना, (२) अच्छे विचार दूसरों को देना, (३) सेवा या श्रेष्ठ कर्मों में सहयोग करना है।

इन तीन कार्यों में से ज्ञान भक्ति को–योग। स्वाध्याय सत्संग को–यज्ञ। और अज्ञान विरोधी युद्ध को तप समझना चाहिए और इस योग, यज्ञ, तप को– सत्य, प्रेम, न्याय को–अपनी सुविधा और परिस्थिति के अनुसार कार्यक्रम बनाकर नित्य कार्य रूप में परिणित करना चाहिए।

(५) ज्ञान मन्दिर दो प्रकार के होंगे (१) सामूहिक (२) व्यक्ति गत। जहां एक ही व्यक्ति तीन नियमों को यथा शक्ति पालन करने की प्रतिज्ञा करने वाला हो वहां उस व्यक्ति का शरीर ही ज्ञान-मन्दिर होगा। जहां एक से अधिक व्यक्ति उपरोक्त बातों को स्वीकार करें वहां सामूहिक ज्ञान मन्दिर की स्थापना करनी चाहिए।

(६) सामूहिक ज्ञान मंदिर के लिये किसी स्थान की व्यवस्था करनी चाहिये। जहाँ सामूहिक स्वाध्याय सत्संग की सुविधा हो। इस कमरे में आदर्श वाक्य लिखने चाहिये, महापुरुषों को चित्र टाँगने चाहिये और साफ सुथरा रखना चाहिये जिससे वहाँ आने वालों के मन पर अच्छी छाप पड़े। यहाँ एक पुस्तकालय होना चाहिये। अच्छी अच्छी चुनी हुई, ज्ञानवर्धक पुस्तकें ही यहाँ रहें। दैनिक एवं साप्ताहिक अखबारों की व्यवस्था रहनी चाहिये। कुछ विवेक संगत मासिक पत्र भी मँगाये जा सकते हैं। दैनिक या सप्ताहिक सत्संग की, विचार विनियम की योजना बननी चाहिये। व्यायामशालाऐं, रात्रिपाठशालाऐं, मंदिर के द्वारा आयोजित हो सकती है अच्छी पुस्तकें सुनाने के लिये कथा कहने का ढंग अपनाना चाहिये। विचार द्वारा संकीर्तन हो सकते हैं। हस्तलिखित मासिक पत्र चलाये जा सकते हैं दीवारों पर अच्छे वाक्य लिखने की पद्धति भी अच्छी है। इसी प्रकार विचार करने पर स्थिति के अनुसार जो ज्ञान वर्धक कार्य हो सकें इस मंदिर के द्वारा आयोजित किये जावें।

(७) जहाँ एक ही व्यक्ति हो वह अपने शरीर को ज्ञान मंदिर समझे। उपरोक्त कार्यक्रमों में से जो कार्य जितनी मात्रा में होसके स्वयं करे तथा दूसरों को वैसा करने के लिये प्रोत्साहित करे।

(८) यदि कहीं एक ही सदस्य हो तो उसे उपरोक्त तीन प्रतिज्ञाऐं किसी दिन पवित्र होकर, उपवास के साथ, ईश्वर को साक्षी देकर करनी चाहिये। जहाँ कई व्यक्ति हों वे इकट्ठे होकर एक दूसरे के सामने प्रतिज्ञाऐं करें। यह प्रतिज्ञाऐं अपनी भाषा में, अपने भावों के अनुसार दो कागजों पर लिखनी चाहिये एक कागज स्थानीय ज्ञान मंदिर में रहे दूसरा प्रतिज्ञापत्र–"अखण्डज्योति कार्यालय" को भेज देना चाहिये। उसमें नीचे (१) प्रतिज्ञा की तिथि, (२) पूरा नाम व पता (३) वर्ण (४) जन्म तिथि संवत भी लिखना चाहिए।

(९) सदस्यों को अपनी जन्म तिथि के दिन हर मास उपवास करना चाहिए और बचा हुआ अन्न पैसों के रूप में अपने यहां के ज्ञान मंदिर को ज्ञान प्रचार के लिए दे देना चाहिए। वार्षिक जन्म तिथि के दिन कुछ विशेष दान करना चाहिए। इस दान से स्थानीय ज्ञान मंदिर का खर्च चलने में सहायता मिलेगी। चन्दे द्वारा भी इस कार्य के लिए पैसा इकट्ठा करना चाहिए।

(१०) प्रतिज्ञा करने वाले सदस्य जब तक अपनी प्रतिज्ञा वापिस न लें या दुराचरण के कारण वहिष्कृत न कर दिये जांय तब तक वे बराबर ज्ञान मंदिर के सदस्य बने रहेंगे। सदस्य प्रतिवर्ष अपने में से एक 'कुलपति' चुनेंगे। अन्य कोई पदाधिकारी न चुना जायगा। यह 'कुलपति' ही सदस्यों के

(११) व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों ही प्रकार के ज्ञान मंदिर अखंडज्योति से संबंधित होने चाहिए। संबंध स्थापना के लिए मंदिर के सदस्य या सदस्यों को एक प्रथक प्रतिज्ञा पत्र भेजना चाहिए जिसमें लिखा हो कि "मैं या हम अखण्डज्योति के हर एक उचित आदेश का यथाशक्ति पालन करने का सदा प्रयत्न किया करेंगे।" मथुरा से सम्बन्ध की स्वीकृति पहुंच जाने पर सम्बन्ध स्थापना मानी जायगी। सम्बन्धित सामूहिक तथा व्यक्तिगत ज्ञान मंदिरों की सूची तथा उनके कार्यक्रम की रिपोर्ट अखंडज्योति में प्रकाशित होती रहेंगी।

(१२) ज्ञान मंदिरों को समय समय पर अपनी योजना और कार्य प्रणाली की सूचना देकर तत्सम्बन्धी सलाह मशविरा मथुरा से प्राप्त करते रहना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या लिफाफा भेजना आवश्यक समझना चाहिये।

उपरोक्त विधि व्यवस्था के अनुसार जगह जगह ज्ञान मंदिरों की स्थापना होनी चाहिये। आरम्भ में इनके द्वारा थोड़ा थोड़ा कार्य होगा परन्तु कल्याण पथ की ओर थोड़ा सा कदम उठाना भी व्यर्थ नहीं जाता। गीता का कथन है कि "नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।" अर्थात्—शुभ कर्म के आरम्भ का कभी नाश नहीं होता, उलटा फल भी नहीं होता, इस धर्म का थोड़ा भी साधन महान् भय से रक्षा करता है। यह प्रयत्न बीज रूप में छोटा हो तो भी इससे उत्पन्न होने वाले पौदे, वृक्ष और फूल फलों की संभावना महान् है। विवेक के यह संस्कार किसी अच्छे क्षेत्र में पड़ जाय तो ऐसे महापुरुषों का निर्माण हो सकता है जो जनता जनार्दन की बहुत बड़ी सेवा करके दिखला सकें। ज्ञान मंदिरों की स्थापना का उपरोक्त कार्यक्रम बहुत ही सरल और साधारण है जिसे साधारण स्थिति के पाठक भी पूरा कर सकते हैं। अखंडज्योति द्वारा पूरा सहयोग और पथ प्रदर्शन उन्हें प्राप्त होगा।

प्राणायाम संबंधी अनुभव

(डाक्टर शोजाबुरो ओटेव)

जब मैं पांच वर्ष का था तभी से मुझे बीमारियों ने घेर लिया था, आरम्भ में मेरी बांई जांघ में अस्थि शौथ हुआ। अस्पताल में चीर फाड़ हुई जिसमें बेकाम हड्डी के तीन टुकड़े निकाले गये। इसके बाद मैं बहुत ही दुर्बल पीला और रक्तहीन हो गया। डाक्टरों ने मेरी कम चौड़ी और सुकड़ी हुई छाती देखकर संदेह प्रकट किया कि कहीं तपैदिक का शिकार न हो जाऊँ, वैसे मैं इतना दुर्बल और रुग्ण आकृति का होगया था कि हर कोई मुझे तपैदिक का रोगी समझता था। अनेक उपचारों के बाद भी जब किसी प्रकार मेरे स्वभाव में कोई उन्नति न हुई तो निराश होकर मैं अपनी मृत्यु की घड़ियां गिनने लगा।

इन्हीं दिनों मैंने एक व्याख्यान में सुना कि—"प्राणायाम द्वारा अधिक आक्सिजन प्राप्त करके फेंफड़ों को मजबूत और स्वास्थ्य को उन्नत बनाया जा सकता है।" उसी दिन से मैंने प्राणायाम करना आरम्भ कर दिया। सोते जागते मुझे सदा प्राणायाम की ही धुन लगी रहती।

इससे मेरे शरीर की असाधारण उन्नति हुई। एक वर्ष के भीतर ही छाती का घेरा ४ इंच अधिक बढ़ गया और ऊँचाई भी करीब चार इंच बढ़ी। इससे अन्दाज लगाया जा सकता है कि मेरा स्वास्थ्य किस तेजी से आगे बढ़ा। डाक्टरों से जाँच कराई तो उन्होंने बताया कि अब फेंफड़े इतने मजबूत होगये हैं कि तपैदिक होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। २ अगस्त सन् १९०५ से लेकर १८ जुलाई सन् १९०७ तक के दो वर्षों के भीतर मेरा वजन करीब २२ पौंड बढ़ गया। तब से मैं नित्य प्राणायाम करता हूँ और सदा स्वस्थ रहता हूं। मैं प्राणायाम का कट्टर भक्त हूं। मेरा विश्वास है कि उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए प्राणायाम एक संजीवनी बूटी है।

'लू' लगना और उसका उपचार

(कोटा के वैद्य श्री गोपीनाथ जी गुप्ता के एक लेख का आवश्यक अंश)

गरमी के दिनों में तेज धूप और गरम हवा में जाने से या तेज गरमी के समय हवा के बन्द होने से, गरमी के समय में शराब पीने से, परिश्रम करने से, और रेल के छोटे डब्बे में तेज गरमी के समय बहुत से, आदमियों के भेड़ बकरियों की तरह भर जाने से एक दम शरीर गरम हो जाता है और खून में गरमी बढ़कर बेहोशी होने लगती है, उसे 'लू लगना' कहते हैं।

यह रोग प्रायः दोपहर को हुआ करता है, परन्तु बहुत गरम देशों में रात को भी हो जाया करता है।

जो लोग गरमी के समय बारीक या काले रंग के कपड़े पहन कर धूप में घूमते हैं उनको लू लगने का अधिक डर रहता है।

लक्षण—धूप में जाने या गरम हवा लगने के साथ ही सर दर्द होता है, और सर मे चक्कर आता है। आंखें लाल हो जाती हैं, और फिर जोर का बुखार चढ़ आता है। बुखार बहुत ही तेज होता है। कभी २ तो १०८ डिगरी से भी ऊपर पहुँच जाता है। बेचैनी और घबराहट बहुत अधिक होती है। प्यास बढ़ जाती है। दिल जोर २ धड़कने लगता है। सांस लेने में भी कठिनाई होती है। पेशाब भी बार २ आता है।

यदि शीघ्र ही उचित उपाय नहीं किया जाता या उपाय सफल नहीं होता तो बेहोशी हो जाती है और कभी २ तो इसी बेहोशी में कुछ मिनटों में ही प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

अगर गरमी का असर थोड़ा हुआ तो बुखार नहीं आता, बल्कि शरीर की गरमी कम हो जाती और चिपचिपा मालूम देता है। जी मिचलाता और उल्टी होती है। आंखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं और रोगी को एकदम कमजोरी आ जाती है।

किसी-किसी को खूब पसीना आता है, और दम फूल जाता है। कभी २ इस दशा में भी बेहोशी होकर और दिल की धड़कन बन्द हो मृत्यु हो जाती है।

पूर्व उपाय—

१—लू से बचने के लिए गरमी के दिनों में नंगे पैर धूप में न जाना चाहिये। या तो छतरी लेनी चाहिये या अगर साफा बांधा हो तो उसका छोर कमर तक लटकता रहना चाहिये, जिससे रीढ़ की हड्डी धूप के असर से बची रहे। काले रंग के कपड़े भी न पहिनने चाहिए।

२—गरमी के दिनों में मांस, मछली, अंडा, गर्म मसाला, चाय और शराब आदि गरम चीजों से बचना चाहिये। कब्ज न रहने देना चाहिये। रोजाना प्रातःकाल और दोपहर को—ठण्डे पानी से नहाना चाहिये। प्रातःकाल छाछ (तक्र मट्ठा) या दही की लहसी पीना लाभदायक है।

जिन्हें कभी एक बार यह रोग हो चुका हो उन्हें बहुत सावधान रहना चाहिये।

लू लगे रोगी को फौरन ठण्डी जगह में आराम से लिटा दें। ठण्डा पानी पिलावें। मिल सके तो बरफ चुसावें। सिर पर ठण्डा पानी बहुत देर तक न डालते रहना चाहिये।

अगर रोगी बेहोश हो जाय तो बार २ मुंह पर ठण्डे पानी के छींटें दें, और सिर पर १-२ घड़ा ठण्डा पानी डलवा दें।

यह ध्यान रखना चाहिये कि रोगी को ठण्डे पसीने आते हों, या सांस जोर जोर से आने लगे और नाड़ी कमजोर हो जाये तो पानी न डालकर सिर्फ मुंह पर जोर २ से ठण्डे पानी के छींटे मारें।

रोगी को तेज बुखार हो तो ऊपर वाला ठण्डा इलाज इतनी देर तक करें कि बुखार हल्का

अगर बुखार बहुत तेज न हो तो सिर्फ नीचे लिखे हुए इलाज से ही आराम हो जाता है।

१—एक सफेद चादर को छाछ (तक्र) में थोड़ी देर औटावें फिर निकाल कर बिलकुल ठण्डा करके उसमें रोगी को लपेट दें।

२—रोगी की नाभि पर कांसी या ताँबे का गहरा कटोरा या थाली रखकर उस में ऊपर से ठण्डे पानी की धार बहुत देर तक छोड़ते रहें।

३—कांसी की थाली रोगी के शरीर पर ऊपर से नीचे तक फिरावें।

४—एक कच्चा—बड़ा सा आम लेकर भूबल (गरम राख) में दबा दें। जब वह नरम हो जाये तो छीलकर गूदा निकाल लें और उस ठण्डे पानी में मलकर मिसरी या खाँड़ मिलाकर रोगी को पिलादें। यदि कब्ज हो तो इसमें दो तोले इमली का गूदा भी मलकर छान लेना चाहिये। या गाय के ताजे दही में ठण्डा पानी मिलाकर लहसी बना कर पिलावें।

५—बेहोसी को दूर करने के लिये कोई खुशबू सुँघाँना लाभदायक है।

६—पंखे को ठण्डे पानी में भिगो कर उससे धीरे धीरे हवा करते रहें। पंखा खस २ का हो तो बहुत अच्छा है।

७—गाय के ताजे और मीठे दही को पानी में मिलाकर लहसी बनावें और खाँड डाल कर पिलावें। (बरफ से ठण्डा कर लिया जाए तो और भी अच्छा है)।

८—शरबत फालसा—पके हुवे फालसों को मलकर कपड़े में निचोड़ कर ७० तोले रस निकालें और उसमें ४० तोले खाँड मिला कर पका कर शरबत बनावें। इस सर्बत को पानी में मिलाकर पीने से गरमी की वमन (उल्टी) प्यास और दस्तों में बहुत लाभ होता है। लू लगने से होने वाले सब विकारों को दूर करता है।

९—पके फालसे को निचोड़ कर निकाला हुआ रस ४ तोले, गुलाब का अर्क ४ तोले और बरफ से ठण्डा करके पिलावें। इससे भी लू के विकार नष्ट होते हैं।

१०—सूखा धनिया ३ माशा और काहू के बीज ३ माशे लेकर पानी के साथ पीस कर कपड़े में छान लें और उसमें ४ तोले अर्क गुलाब तथा २ तोले चन्दन शरबत या अनार अथवा फालसे का शरबत मिलाकर पिलावें। (शरबत न हो तो खाँड़ से मीठा करके पिलावें)।

११—गुलाब के अर्क में सफेद चन्दन घिस कर उसमें रूमाल भिगो कर रोगी के सिर पर रक्खें और उसे सूखने न दें। इसी पानी को पंखे पर छिड़क कर उससे हवा करें। इससे गरमी और लू की बेहोशी दूर हो जाती है।

१२—रोगी को केले के हरे पत्तों पर सुलाना लाभदायक है।

१३—खमीरा गाजुवाँ सादा १ तोला, चाँदी के वर्क में लपेट कर, या आँवले का मुरब्बा चाँदी के वर्क में लपेट कर, या खमीरा मरवारीदा—पानी या अर्क गाजबां के साथ सेवन करने से लू के रोगी को लाभ होता है।

पथ्य—बुखार उतरने और रोगी के होश-हवाश ठीक होने पर जौ का पानी पिलावें या भुने हुए जौ का सत्तू गुड़ के शरबत में घोलकर पिलावें अथवा गाय के दही की ताजी छाछ दें।

आराम होने के बाद भी लौका, तुरई आदि ठण्डे शाक देते रहें और कुछ दिनों तक गरम चीजों से परहेज रक्खें।

सात्विक सहायतायें।

इस मास ज्ञानयज्ञ के लिए निम्न सहायतायें प्राप्त हुईं। इसके लिए अखंड ज्योति कृतज्ञता प्रकट करती है।

२५) श्री काशीप्रसादजी अग्रवाल, आरंग,
२१) श्रीमंगलचन्दजी भण्डारी हिं.सा.विशारद अजमेर
६) श्री धर्मपालसिंहजी रुड़की,
३॥) चौ० विश्वम्भरसिंहजी सुरजनपुर,
३।) श्री धूमसिंह वर्मा कविरत्न समौली,
१) श्री नोनप्रसादसिंहजी घरियारी

दुर्भावनाओं को दूर हटाइए।

(श्री० स्वामी शिवानन्दजी महाराज)

हमारी प्रकृति में बुरी प्रवृत्तियाँ हैं। उनको उखाड़ने के लिये बड़े साहस तथा परिश्रम की आवश्यकता है और सबसे सहज उपाय यह है कि उच्च प्रवृत्तियों को उनका स्थानापन्न बनायें। यदि स्वभाव बुरा है, तो अच्छा स्वभाव बनाने का प्रयत्न कीजिये। धीरे २ बुरी प्रवृत्तियां दूर हो जायँगी और उनके स्थान पर अच्छी प्रवृत्तियां अपना अड्डा जमायेंगी। बुरे विचार अच्छे विचारों से हटाये जा सकते हैं।

प्रेम सनातन तथा स्वाभाविक है। घृणा क्षणिक है तथा इसके विकार अस्वाभाविक हैं। साहस अनादि तथा प्राकृतिक है। साहस धर्म्म है। भय क्षणिक है तथा अस्वाभाविक है। दया धर्म्म है यह अनादि तथा स्वाभाविक है घृणा अस्वाभाविक विकार है। घृणा के स्थान पर प्रेम लाना चाहिये। हर एक मनुष्य के गुण को देखिये। उसके अवगुणों का विचार न कीजिये। सतत् परिश्रम से धीरे २ मन को शिक्षा दीजिये। पचास बार यदि आप असफल होंगे, तो इक्यावनवीं बार आप अवश्य सफलता प्राप्त करेंगे। यह निश्चय है। राजसिक मन की यह स्वाभाविक वृत्ति है कि मनुष्य के अवगुणों को ही देखता है, घृणा उत्पन्न होती है, दूसरे के स्वभाव की समालोचना करता है, दूसरे की निंदा करता है, दूसरों से लड़ता झगड़ता है। सात्त्विक मन का यह गुण है कि वह मनुष्य के अच्छे गुणों को देखता है, अवगुण पर विचार नहीं करता, क्षमा प्रदान करता है तथा अज्ञानियों के साथ सहानुभूति दरशाता है।

जब कोई स्त्री अपने पति से झगड़ा करती है और उसका बच्चा गोदी से गिर पड़ता है, तो वह बच्चे को चूम लेती है और झगड़ा बन्द हो जाता है। वह खिल के हँसती है। बच्चे की उपस्थिति [illegible] के [illegible] पर [illegible] देती है। इसी प्रकार बुरी वासनायें अच्छे विचारों से दवाई जा सकती हैं। जिस प्रकार एक माली बड़े प्रयत्न तथा परिश्रम से उत्तम २ सुगन्धित पुष्पों को वाटिका में लगाता है इसी प्रकार हमें अच्छी वृत्तियों तथा भावनाओं को अपने हृदय में लगाना चाहिये, जिससे आत्मोन्नति हो। पांचवें या छठे मास हमें देखना चाहिये कि हममें कहां तक अच्छी भावनायें तथा उच्च विचार पाये जाते हैं। पुरानी दुष्ट प्रवृत्तियाँ हृदय में अपना अड्डा जमाने के लिये सतत् प्रयत्न करेंगी तथा अच्छी भावनाओं के दवाने का प्रयत्न करेंगी। हमको सदैव सचेत रहना चाहिये। अन्त में हमारी विजय होगी विचार द्वारा बुरी वासनाओं को हटाइये। सदैव 'शिवोऽहम्' पर विचार कीजिये। वृथा विचार मन में न आने दीजिये। हवाई क़िले की गढ़न्त मस्तिष्क में न होने दीजिये। वासनाओं को स्वतंत्र न होने दीजिये। वासनाओं को नष्ट कीजिये। प्रयत्न से वे स्वयं नष्ट हो जायेंगी। क्षमा द्वारा क्रोध को शान्त कीजिये। हृदय में प्रेम तथा ऐक्यभाव उत्पन्न कीजिये क्योंकि दूसरा कौन है जिस पर आप क्रोध करेंगे। सब तो आप ही हैं दूसरा कहां है। यह सब अविद्या है। 'एकमेवाद्वितीयम्' सब एक ही है दूसरा कोई नहीं है। ये विचार सदैव मनन करने योग्य हैं।

उदारता तथा दान द्वारा लोभ को नष्ट कीजिये। 'अहंब्रह्मास्मि' भावना द्वारा आत्मप्रशंसा को नष्ट कीजिये। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। नम्रता से अपने घमण्ड को दूर कीजिये। निष्काम कर्म से अभिमान को दूर कीजिए। साहस से भय को दूर कीजिए जब ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं तो भय किसका, आप तो स्वयं ब्रह्म हैं। इन्द्रियों को तप से नष्ट कीजिए। मैत्री करुण तथा आर्जव से भावनाओं को स्वच्छ कीजिए। मुदित से ईर्षा को दूर कीजिए। वासनाओं को हटाकर इच्छा को बलवान कीजिए। सन्तोष, विचार, सन्यास सत्संग, तथा समाधि द्वारा अपने हृदय में शान्ति का राज्य स्थापन कीजिए।

विद्या बनाम सदाचार

(श्री. पं० विष्णुदत्तजी, पथैना, भरतपुर)

मनुष्यों का कहना है कि संसार में सब से मूल्यवान् और सम्माननीय वस्तु विद्या है। जिसके पास विद्या है उसके सामने संसार शिर झुकाता है। परंतु मैं कहता हूं कि एक वस्तु और है—जिसके सामने विद्या को भी शिर झुकाना पड़ता है। जहां विद्या नाक रगड़ती है, जहां विद्या अपरिहार्य हो जाती है, वह वस्तु है—"सदाचार"। आप विद्वान नहीं हैं या नहीं हो सकते हैं तो इसकी कोई परवाह नहीं। यदि आप सदाचारी हैं या हो सकते हैं, तो आप सहस्र विद्वानों के बराबर शक्ति अकेले ही उत्पन्न कर सकते हैं। संसार में जितने महापुरुष हुए हैं उन्होंने केवल विद्या के बल पर उच्च जीवन नहीं बनाया है। उनकी ख्याति सदाचार के बल से ही हुई है। आज दिन लोग विद्वान् बनने की आकांक्षा रखते हैं, पर सदाचारी बनने की तरफ उनका ध्यान नहीं है। परिणाम यह होता है कि विद्वान् बनने पर भी उनके जीवन कुछ विशेष मूल्यवान प्रमाणित नहीं होते।

"रावण" के विषय में कहा जाता है कि वह बड़ा भारी नीतिज्ञ, सब विद्याओं के जानने वाला पंडित था और धुरन्धर वीर था। उसकी सी सम्पदा, शक्ति, योग्यता, क्षमता और उसका सा पद पाने को बहुत से मनुष्य इच्छुक रहते हैं। पर उसमें एक कमी थी वह "सदाचारी" नहीं था। इसी से उसकी शक्ति, विद्या, योग्यता सब मिट्टी में मिल गई। "रोम" का प्रख्यात बादशाह "नीरो" प्रकाण्ड तत्ववेत्ता और बड़ा पण्डित था, पर आचार हीनता के कारण आज तक वह रावण ही के समान तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है।

आज भारत की जनता "जगद्गुरु शङ्कराचार्य्य" स्वामी दयानन्द और लोकमान्य तिलक को आदर की दृष्टि से क्यों देखती है? म० टालस्टा, वीरवर मेकस्वानी, ह० ईसा व ह० मूसा आज तक यूरोप निवासियों के हृदय पर राज्य क्यों कर रहे हैं? क्या उनकी विद्या के कारण? नहीं, उनकी विद्या के सामने संसार ने शिर नहीं झुकाया। जनता ने उनके सदाचार का महत्व माना। इसी लिये उनका पूजन कर रही है। जगद्गुरु शङ्कराचार्य, स्वामी दयानन्द एक सन्यासी थे। लो० तिलक बी० ए०, ऐल० ऐल० बी० थे। इस कारण किसी ने उनका आदर नहीं किया। कितने ही बी० ए० ऐल० ऐल० बी० मारे २ फिरते हैं। उन्हें कौन पूछता है। प्रत्युत ऐसा हुआ कि ज्योंही उनके चरित्र का विकास हुआ त्योंही गर्वीली डिग्रियाँ लुप्त प्रायः होगई। सदाचार को देखते ही गर्वीली विद्या ने अपना प्रधान पद छोड़ दिया। यह मुँह छिपाकर भाग गई। आज स्व० शङ्कराचार्य व स्व० दयानंद व लो० तिलक के नाम के सामने उनकी डिग्रियां लगाना उनका अपमान करना है। विद्या ने जो पद उन्हें दिया था सदाचार ने उससे अधिक पद प्रदान किया। वे पुरुष धन्य हैं जिन्हें सदाचार का ध्यान है। जो सदाचार में आदर्श हैं, वे ही पुरुष पूज्य हैं। कल्पना कीजिए कि कोई व्यक्ति महा पण्डित विद्वान् और तार्किक है पर शराबी, वेश्यागामी, झूठा या स्वार्थी है। क्या वह लोगों का प्रिय बन सकता है? कदापि नहीं। इसके विरुद्ध कोई मनुष्य जाति से नीच और मूर्ख है, परन्तु सबको प्रेम करने वाला, सत्यवक्ता, धैर्यवान और छल रहित है क्या उसका आदर नहीं होगा? होगा अवश्य होगा। बस, इसीलिये कहता हूं कि सदाचार के सामने विद्या झुक जाती है। सदाचार के सामने विद्या कोई वस्तु नहीं। यदि आप विद्वान् नहीं हैं तो निस्संदेह आप का विद्वान् बनना कठिन है। परन्तु सदाचारी बनना सरल है।

बरसीं मेरी आँखें झर झर

[राजकुमारी श्री रत्नेश कुमारी ललन मैनपुरी स्टेट]

देखा एक वयोवृद्धमानव थे जिसके अङ्ग शिथिल सारे।
होरहीं शक्तियाँ अस्तव्यस्त झुक रही कमर दुख के मारे॥
जीवनभर पिसता रहा, कमाता रहा, पालता रहा, स्वजन सब बेचारा।
पर आज रोरहा तिरष्कार, अपमान, उपेक्षा का मारा॥
कैसे कहती तू धीरज धर ?
बरसीं मेरी आँखें झरझर॥

देखा एक रोग ग्रस्त जिसको चिरकाल व्यथा सहते बीता।
सब व्यर्थ प्रयत्न हुए उसके, गम खाता था आँसू पीता॥
उसको, उसके घरवालों को, था उसका जीवन एक भार।
वह बुला रहा था, किन्तु मृत्यु भी सुन न सकी उसकी गुहार॥
कैसे कहती तू जल्दी मर ?
बरसीं मेरी आँखें झरझर॥

बालिका एक विधवा अबोध, था स्वप्न तुल्य उसको सुहाग।
लोहे की लाठी उसके दिल को कुचल सिखाती थी विराग॥
पति परित्यक्ता थी एक जिसे स्वजनों ने भी था ठुकराया।
पाये आश्रय असहाय कहाँ यह नहीं उसे था बतलाया॥
बतलाती क्या सुरसरि का घर ?
बरसीं मेरी आँखें झर झर॥

देखे मानव जो जठर ज्वाल में तिल तिल होते भस्म सात।
दम तोड़ रहे थे तड़प तड़प अकड़े सरदी से सुन्न गात॥
देखा अन देखा कर सुख से 'सम्पन्न' समाज रहा जीता।
इस कुरुक्षेत्र में किसी कृष्ण ने कही न भूखों की गीता॥
कैसे सकती दुख उनका हर ?
बरसीं मेरी आँखें झर झर॥

मानव उतरा दानव पन पर मानवता का कर परित्याग।
सोया समत्व, सद्भाव, स्नेह तृष्णा, मत्सरता उठी जाग॥
सीधा सच्चा पथ छोड़ चली दुनियाँ विनाश की ओर अरे।
होता अनीति का नग्न नृत्य यह कैसा भय प्रद, हरे! हरे!!
अन्तस्तल काँप उठा थर थर।
बरसीं मेरी आँखें झर झर॥